Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 6, May-2019, ISSN 2230-7540

हिंदी साहित्य की आत्मकथाओं में आर्थिक एवं राजनीतिक पीड़ा का अध्ययन

Dr. Premchand Tiwari*

Principal, Gyanoday High School and Junior College, District-Thane, Maharashtra

सांराश – *साहित्य मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाता है। इस कार्य को पूरा करने में जिस लगन और समर्पण को परिचय एक रचनाकार देता है, वह मानव-समाज के लिए सदा से प्रेरणा स्रोत रहा है । भाषा का श्रेष्ठ रूप तथा उसकी अन्तर्निहित शक्तियाँ केवल साहित्य के माध्यम से ही उजागर होती हैं। आत्मकथा व्यक्ति का वह अन्तःसाक्ष्य है जो उसके सम्पूर्ण जीवन यात्रा का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। आत्मकथाकार अपने विगत जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को सच्चाई और ईमानदारी के साथ तटस्थ होकर अभिव्यक्त करता है। अपने विषय में कुछ बताने की इच्छा मानव मात्र मे स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। इस शाश्वत और स्वाभाविक इच्छा को कार्य रूप में परिणत करने के लिए मानव आत्मकथा के सृजन हेतु अग्रसर होता है। हिन्दी साहित्य में इस विद्याके अतिरिक्त कोई भी ऐसी विद्या नही है, जो प्रत्येक रूप से मानव के व्यक्तित्व का उद्घाटन करने में समर्थ हो। इस दृष्टि से साहित्य की अन्य सभी विद्याओं में सबसे अनुकूल एवं सहज विद्या आत्मकथा ही प्रतीत होती है।*

---------------------------------x---------------------------------

प्रस्तावना

आत्मकथा एक ऐसा विशिष्ट दस्तावेज है जो सहज साधारणीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति को समष्टि मतिरोहित करने की सामर्थ्य रखता है। अपने बारे में निश्चित रूप से लिखना सचमुच एक अत्यन्त कठिन दुरुह लड़ाई लड़ना है। आत्मकथा एक ऐसा साहित्य प्रकार है, जो चरित्र नायक के अन्तर्मन से शुरू होकर घर, समाज, राष्ट्र और विश्व तक को अपनी परिधि में समेट लेता है। स्वयं के माध्यम से स्वयं को ही विषय-वस्तु के रूप में वर्णित करती कृति आत्मकथा एक ओर पाठको के लिए असीम कौतुहल, मानवीय संवेदनाओं और जिज्ञासाओं का कारण है, दूसरी ओर आत्मकथाकार के लिए निर्मम एवं भयावह स्थितियों की सृजनकर्ता भी। आत्मकथाकार खुद के बहाने से परिवेशगत चरित्रों, सामाजिक रूढ़ियों, राजनीतिक आन्दोलनों, सांस्कृतिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को उद्घाटित करता है। हिन्दी साहित्य में लिखी गई सर्वप्रथम आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' है, जिसे जैन कवि श्री बनारसीदास ने सन् 1641 में लिखा था। इसके पश्चात् भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी की अधूरी आत्मकथा 'कुछ आपबीती-कुछ जगबीती' का उल्लेख आता है। तदनंतर इस परम्परा में अनेक आत्मकथाएँ प्रकाश में आई। इनमें से कुछ आत्मकथाएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय हैं। यथा - महर्षि दयानन्द सरस्वती की 'स्वकथित आत्मचरित', स्वामी श्रद्धानंदसंन्यासी की 'कल्याण मार्ग का पथिक', बाबू गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ', श्री वियोगी हरि की 'मेरा जीवन प्रवाह', श्री मोहनदास करमचंद गांधी की 'सत्य के प्रयोग', पण्डित जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी', श्री रामप्रसाद बिस्मिल की 'आत्मकथा', डॉ. हरिवंशराय बच्चन की 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ,' 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर', 'देशद्वार से सोपान तक,' श्रीमती अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट', श्रीमती दलिप कौर टिवाणा की 'नंगे पैरा का सफर', डॉ. नगेन्द्र की 'अर्द्धकथा', श्री उदयभानु हंस की 'स्मृतियों के शिलालेख' आदि ।

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से लेकर आज तक जितने भी युग प्रवर्तक और स्वनामधन्य साहित्यकार हुए हैं, उन सबने किसी न किसी रूप में आत्मकथाआ के माध्यम से स्वयं के अतीत का उद्घाटन किया है। आत्मकथाओं के आलोक में ही संबंधित आत्मकथाकार के साहित्यिक व्यक्तित्व का, उसके विकासक्रम का तथा उसके जीवन सर्वस्व का प्रामाणिक परिचय प्राप्त किया जा सकता है । आत्मकथा, गद्य की अन्य विधाओं के समान ही हिन्दी साहित्य के लिए आधुनिक

www.ignited.in

काल की उपज है। आत्मकथा लेखन की भावना का उदय भारतेन्दु युग से ही हुआ। इस युग से लेकर आज तक इस विधा की व्याप्ति दृष्टिगोचर होती है ।

आत्मकथाओं में धार्मिक पीड़ा के स्वर

प्राचीन समय में सभी कार्य पूर्णतः धर्म पर आधारित थे। शिक्षा हो या राजनीति सभी धर्म के बिना अधूरे माने जाते थे सिंहासन ग्रहण करने वाले राजकुमारों को पहले गुरु आश्रम में रहकर धर्म एवं नीति संबंधी ज्ञान अपने गुरु से सीखना पड़ता था। गुरु के वचन की अवहेलना किसी भी कीमत पर नही की जा सकती थी। धर्म ही राजा का सही मार्गदर्शन करता था ।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। प्राचीनकाल से ही भारत विभिन्न सम्प्रदायों और संस्कृतियों का निवास स्थल रहा है। भारत में सभी धर्मों की झलक देखने को मिलती है। इसलिए हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आपस में सब 'भाई-भाई' का नारा दिया जाता है । प्रत्येक व्यक्ति का अपना धर्म होता है। धर्म ही मानव का मार्गदर्शक होता है। वह उसमे अपनी श्रद्धा, आस्था व पवित्रता सम्बन्धी भावनाऐं अर्पित कर बदले में कल्याण की कामना करता है। भारतीय संस्कृति में धर्म को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारत धर्म के महत्त्व के बारे में डॉ. राजदेव दूबे जी अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं "भारतीय संस्कृति की धार्मिकता अपने आप में अनोखी रही है। संसार में सब मनुष्य एक से नही होते। उनकी एक सी प्रकृति, बुद्धि तथा रुचि नहीं होती। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी विचारधारों के अनुसार विश्वास रखने तथा उसको प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। इसमे सब प्रकार के धार्मिक विश्वास रखने की छूट है। इसमें द्वैतवाद, अद्वैतवाद, साकार उपासना आदि सभी को स्थान है। भारत का धर्म निरपेक्ष संविधान धार्मिक सहिष्णुता को स्पष्ट करता है। आज हमारी संस्कृति जिस स्थान पर पहुंची है, उससे यही प्रतीत होता है कि आज हम धार्मिक लक्ष्य से भटककर भौतिकता में पहुंच रहे हैं। धर्म का लक्ष्य पद, प्रतिष्ठा, पैसा हो गया है। भारतीय धर्म भी पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से अछूता नही रहा है। बौद्धिकता एवं तार्किकता के प्रभाव से धार्मिक अंधविश्वासा एवं कर्मकाण्डों के महत्त्व में कमी आई है। मनुष्य नास्तिकता की ओर अग्रसर है। उन पर विज्ञान का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल' जी इस स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं" आज मनुष्य को ईश्वर, उससे संबंधित ग्रंथों, देवस्थानों, भाग्य आदि को मान्यता प्रदान करने के कोई प्रयोजन दिखाई नही देते।

भारत में लोग धर्म में तहेदिल से विश्वास करते है। धर्म और अंधविश्वास साथ-साथ चलते हैं। किसी भी धर्म विशेष को मानने वाले लोग रूढ़ियों, रीति-रिवाजों को मानने में विवश होते है क्योंकि उनके पीछे-पीछे अंधविश्वास होता है। तांत्रिक और अन्य ज्योतिषी जनता को भयभीत करके व उन्हे ठगने के लिए अंधविश्वास का ताना-बाना धार्मिक आस्थाओं के चारों ओर बुन देते हैं। ब्राह्मण जाति की अत्यधिक महत्ता और कट्टरता के कारण भी समाज अपने कार्यों की पूर्ति हेतु तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत जैसी साधनाओं की चपेट में आ गया है। युग-युगांतर से अनेक प्रकार की धार्मिक प्रथाओं रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों तथा सात्त्विकों, राजसी और तमोगुणी प्रथाओं का प्रचलन भारत में हुआ है। हमारे समाज में आज भी बहुत से लोग है जो टोने-टोटकों के द्वारा किसी का इलाज करते हैं। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीला टाकभौरे भी अंधविश्वास का शिकार होती हैं। बचपन में वे नींद में बहुत डरा करती थी, तब उनके मामा एक टोटके द्वारा उनकी नजर उतारते हैं और बताते हैं कि अब इनकी सब बलाऐं दूर हो गई हैं। लेखिका लिखती है, "मैं बचपन में नींद में डरती थी, तब हरी मामा ने मेरी नजर उतारी थी। मोटी रस्सी का एक फुट लम्बा टुकड़ा मूँगफली के तेल में एक तरफ से भिगोकर जला दिया। दूसरे सिरे को हाथ से पकड़कर मेरे सामने लटकाकर रखा। नीचे पानी से भरी पीतल की बड़ी थाली में जलती रस्सी से गरम तेल टपककर गिरता तब छन्न......छन्न......आवाज आती। हरि मामा मुझे एकटक जलती रस्सी को देखने के लिए कहते। जलती आग के साथ छन्न की आवाज सुनाई देती । रस्सी ऊपर तक जलने लगी तब मामा ने उसे थाली के पानी में डाल दिया । छन्न की तेज आवाज के साथ धुआँ उठा। मामा ने बुरी बालाओं को कुलदेवताओं की सौगन्ध दी और कहा के "उतर गई नजर, अब नही डरेगी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में जब भी धर्म को लेकर लोगों में कट्टरता का भाव जागृत हुआ है तब तब यहां पर बवाल उठे हैं। धर्म का प्रयोग समाज व देश के हित में किया जाना चाहिए परन्तु आज सर्वथा विपरीत कार्य करने में धर्म पीछे नही है। आज भी हमारे देश में हिन्दू धर्म के प्रतीकों के साथ-साथ अन्य धर्मों के प्रतीक चिह्न भी मौजूद है जो यहाँ धार्मिक कट्टरता के कारण हुए साम्प्रदायिक दंगा, विभाजन, आतंकवाद की दास्ता चीख-चीख कर बयान कर रहे हैं। भारत में धार्मिक कट्टरता का उभरना भारतीय संस्कृति के लिए निश्चित ही शुभ संकेत नहीं है ।

प्राचीनकाल से ही जातिप्रथा भारत में एक अभिशाप बनी हुई है। हमारे समाज में व्यक्ति की पहचान गुण, योग्यता, कर्म के आधार पर न होकर उसकी जाति से होती है। यहाँ जातियों, उपजातियों में विभाजित हैं। फिर कुल, गोत्र पद्धति की रचना

है। जाति के आधार पर ही छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच का भेद पैदा किया जाता है। हमारे देश में जातिप्रथा इतनी विस्थापित है कि सारा देश असंख्य जातियों में बँटा हुआ है। हमारे यहाँ जातियों के कारण एक साथ उठना-बैठना व खान-पान भी अधर्म माना जाता है। जाति का सबसे अधिक दुःख दलितों को भोगना पड़ा है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीला टाकभौरे भी जातिवाद की पीड़ा का शिकार होती है। सुशीला टाकभौरे को पानी भी माँग कर पीना पड़ता था। यदि वे गलती से भी किसी नल या पानी के स्रोत को छू लेती थी, तो लोग उन्हें घृणा से देखते और डाँटते-फटकारते थे। लेखिका लिखती है, "हम बहन-भाई छोटे थे तब माँ हमको हफ्ते में दो बार गरम पानी से खूब अच्छे से नहलाती थी। उन दिनों हमें पानी मुश्किल से मिल पाता था, पानी हमेशा माँग कर लिया जाता था। मैं कभी रेलवे स्टेशन के नल से छोटी गागर में पानी भर लेती, तब लोग नल को मिट्टी से कभी पाँच बार, कभी सात बार माँजते-धोते थे और मुझे घृणा-उपेक्षा से देखते हुए डाँटते-फटकारते थे, तब ये सामान्य बात मानी जाती थी।"

केवल अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ समझ उसके हित का विशेष ध्यान रखना और दूसरे सम्प्रदाय को हीन समझकर उससे द्वेष रखना ही साम्प्रदायिकता कहलाता है। भारत में साम्प्रदायिकता का इतिहास बहुत पुराना है। इसके पीछे मुख्य वजह देश में कई सम्प्रदायों के लोगों का रहना है। प्राचीनकाल में भारत में बौद्धों, हिन्दुओं, वैष्णवों, शैवों और शाक्तों के मध्य वाद-विवाद तथा छोटी-मोटी हिंसा होती रहती थी। विभिन्न सम्प्रदायों के लोग अपने धर्म व आचार विचार को श्रेष्ठ समझ दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को घृणित दृष्टि से देखते रहे हैं। धर्म और साम्प्रदायिकता के आपसी सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. सुभाष चन्द्र लिखते हैं "किसी समाज में विभिन्न धर्मों के होने मात्र से ही साम्प्रदायिकता पैदा नही होती। साम्प्रदायिकता स्वतः स्फूर्ति परिघटना नही होती बल्कि साम्प्रदायिकता उन्माद पैदा करने के लिए साम्प्रदायिक शक्तियाँ वातावरण का निर्माण करती हैं, एक-दूसरे के समुदाय के बारे में भ्रम फैलाते हैं। और एक दूसरे के विरुद्ध नफरत फैलाते हैं। भारत में बहुत से धर्मों के लोग रहते हैं, भिन्न-भिन्न धर्मों के होना साम्प्रदायिकता नही है। लोगों के, समुदायों के धार्मिक हित कभी नही टकराते इसलिए उनमें कोई हिंसा तनाव होने का सवाल ही नही उठता। कुछ लोगों के सांसारिक हित (सत्ता-व्यापार) टकराते हैं तो वे अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए इस बात का धुआंधार प्रचार करते है कि एक धर्म के मानने वाले लोगों के हित समान हैं और भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों के हित परस्पर विपरीत एवं विरोधी हैं। बस यहीं से साम्प्रदायिकता की शुरूआत होती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में धर्म को पैसा व नाम कमाने का साधन माना जाता है। युवा वर्ग धार्मिक रूढ़ियों को व अंधविश्वासों को नकार रहा है। पहले ऋषि, साधु-संन्यासी लोक कल्याण के लिए पहाड़ी, वनों, दुर्गम स्थानों पर तपस्या करते थे वही आज मंदिरों, मस्जिदों, मठों आदि में महंत वातानुकूलित कमरों में रहते हैं। बुलेट प्रूफ गाड़ियों में चलत हैं। उनसे मिलने एवं विचार सुनने के लिए फीस देकर समय लेना पड़ता है। ये ढोंगी बाबा धर्म का व्यापार करते हैं। और धार्मिक अंधविश्वास फेलाते हैं। आज हम धार्मिक लक्ष्य से भटककर भौतिकताओं में बदल रह हैं। धर्म का लक्ष्य पद, प्रतिष्ठा और पैसा बन गया है । वर्तमान युग में विज्ञान की प्रधानता होने के कारण मनुष्य का जीवन भौतिकता से परिपूर्ण है जिस कारण वह धर्म से अधिक विज्ञान के प्रति विश्वस्त है। प्रस्तुत अध्याय में अंधविश्वास, धार्मिक कट्टरता, धर्म का व्यवसायीकरण, जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि का वर्णन किया गया है।

आत्मकथाओं में राजनीतिक पीड़ा के स्वर

'राजनीति' शब्द 'राज' और 'नीति' दो शब्दों के योग से बना है। प्रायः 'राज' से राज्य व शासन तथा 'नीति' से नियम का अर्थ लगाया जाता है अर्थात् किसी भी राज्य को चलाने के लिए जो नीतियाँ बनाई जाती हैं वे सब राजनीति के अन्तर्गत आती है। अंग्रेजी में राजनीति 'पॉलिटिक्स' का पर्याय है जो यूनानी शब्द पोलिस से बना है जिसका अर्थ नगर या राज्य होता है। सही रूप में नीतिपूर्वक ढंग से राज्य चलाने के तरीकों को राजनीति कहा जाता है। राजनीति का लक्ष्य प्रजा अर्थात् जनहित है न कि स्वहित। लेकिन वर्तमान राजनीति अपने वास्तविक अर्थ व स्वरूप से भटक रही है। पहले राज्य में नीति के अनुसार राज्य का शासन चलाया जाता था परन्तु आज राजा की सुविधानुसार नीतियाँ बनाई जाती है। किसी भी उचित अथवा अनुचित तरीके से राज्य हथियाने की नीति है। आज के राजनेता स्वार्थ साधने की फिराक में होते हैं। वे सफेद कपड़े पहनकर अपने अन्दर काली करतूत छिपाए रहते हैं। आज प्रायः देखा जाता है कि अयोग्य लोग भी चुनाव जीतकर सरकार में मंत्री बन जाते हैं। यह राजनीति पर कालिख ही नही अपितु व्यंग्य भी है। कृष्ण किशोर जी राजनीति के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं। "राजनीतिक संस्कृति का स्पष्ट आईना बनती हैं। हमारी विधानसभाऐं और संसद। लोगा को आज इनमें विश्वास नही है। एक पैतृक पेशा बन गया है संसद या विधानसभाओं में जाना। कानून बनाना कोई गंभीर प्रक्रिया नही रही। केवल

www.ignited.in

क्षेत्रीय मुद्दे एक संकीर्ण दृष्टि के तहत् लड़ाई . झगड़े का अखाड़ा बने हुए हैं।

आज हमारे देश के राजनीतिज्ञ कुशल राजनेता का मुखौटा पहनकर अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए हैं। उनका मतलब सिर्फ कुर्सी और धन प्राप्त करने से है। आज राजनीति में कुशल होने के लिए बेईमानी, स्वार्थ, झूठ, छलकपट, अभिनय, अपराधी के गुण विद्यमान होने चाहिए। जनता को खरीदने के लिए भरपूर पैसा होना चाहिए व जनता को बहकाने के लिए प्रचार तंत्र मजबूत होना चाहिए। यही नही भारत राजनैतिक एवं लोकतांत्रिक रूप से भी दुनिया का तीसरा अग्रणी राष्ट्र है। यहां का लोकतंत्र विश्व का एक विशाल एवं सशक्त लोकतंत्र है। लोकतांत्रिक संस्कृति में विश्वास रखने वाले राष्ट्र यहां की लोकतांत्रिक प्रणाली से प्रेरणा लेत हैं। विगत दशकों का सूक्ष्मता से अध्ययन करें तो यही राजनीति कभी शून्यता की ओर उन्मुख दिखाई देती है तो कभी यह विशाल पैमाने के आर्थिक अपराधों की ओर तो कभी अस्थिरता की ओर उन्मुख दिखायी देती है। आज की राजनीति छल-कपट की राजनीति हो गई है। राजनेता वोट प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के चुनावी हथकण्डों का प्रयोग करते हैं। 'मुर्दहिया' आत्मकथा में डॉ. तुलसीराम के गाँव के ब्राहमणी कामुखियायमुना पांड़े कांग्रेस को वोट दिलवाने के लिए डॉ. तुलसीराम के सबसे बडे चाचा के पास आता है। यमुना पांडे जानता था कि गाँव के सारे दलित उनके कहने से कांग्रेस को वोट डाल देगे। लेखक लिखता है, "रात का खाना खाने के बाद गांव के करीब दर्जन भर प्रमुख ब्राहमण रोज हमारे घर के सामने उस जलते हुए कौड़े के चारों तरफ बैठ जाते थे और वे चुनाव पर चर्चा शुरू कर देते थे। हमारे क्षेत्र के तमाम ब्राहमण उस समय की दो बैलों की जोड़ी चुनाव चिहन वाली कांग्रेस पार्टी के कट्टर समर्थक थे। हमारे गांव के ब्राहमण भी कांग्रेस के ही समर्थक थे। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि मेंरे सबसे बड़े चाचा बारह गांवों के चैधरी हैं। इसलिए वे सारे दलित उनके ही कहने पर किसी पार्टी को वोट डालेंगे। ब्राहमणों .के मुखिया यमुना पांडे थे। उनके नेतृत्व में ब्राहमणों का जत्था चुनाव सम्पन्न होने के एक दिन पहले तक प्रचार के दौरान रोज उसी कौड़े पर आकर कांग्रेस को वोट देने के लिए कहता था।

आज के राजनेता परिस्थिति के अनुसार अपना रूप परिवर्तित कर लेते हैं। इन राजनीतिज्ञो पर 'मुंह में राम, बगल में छुरी' वाली उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है। चुनाव जीतने के लिए ये राजनेता क्षेत्रवाद, जातिवाद आदि चुनावी हथकण्डों का प्रयोग करते हैं। 'कुछ पढ़ा-कुछ पढ़ाया' आत्मकथा में विद्याभूषण चैबे ने 1983 के मेट्रोपोलिटन के चुनावों में श्री लाल बिहारी तिवारी का समर्थन किया। जो भारतीय जनता पार्टी के प्रत्याशी थे। इसका सबसे बड़ा कारण क्षेत्रवाद था। इस इलाके में पूर्वांचलवासियों का न कोई प्रभावशाली नेता था और न उनकी छोटी-मोटी समस्याओं को सुनने वाला था। विद्याभूषण चैबे जी तिवारी जी के प्रचार में जी जान से जूट गये। लेकिन इस क्षेत्र में कांग्रेस पार्टी का दबदबा था। कांग्रेस पार्टी के समर्थकों की ओर से विद्याभूषण चैबे को लगातार नौकरी से हटवाने और शारीरिक क्षति पहुंचाने की धमकियाँ मिलती रही। लेखक लिखता है, "मैं कोई पार्टी लाइन का बढ़िया वक्ता नही था पर सीधे-सादे ढंग से अपनी बात को जनता के सामने रखने मे मुझे कोई परेशानी नही होती थी। भजनपुरा से बाहर ब्रहमपुरी, सीलमपुर आदि अनेक सभाओंमें जाकर जनता को सम्बोधित किया। तिवारी जी के प्रचार में मैं जी-जान से जुट गया। परन्तु इधर कांग्रेस का पूरे क्षेत्र में इतना दबदबा था कि पार्टी कार्यकर्ता खुलकर सामने नही आता था।

आज का राजनेता चाहे कुछ भी न जानते हो पर भाषण देने की कला में निपुण होता है। यदि वह जनता को झूठे आश्वासन के चक्कर में न फँसा सके तो वह कुशल राजनेता ही नही माना जाता। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह सुनी-सुनाई और आँखों देखी बात को अधिक ग्रहण कर लेता है। उसकी इसी कमजोरी का फायदा नेता लोग चुनावों के समय उठातेहैं। वे जनता की नब्ज अर्थात् जनता के मुद्दों को ही ऐसे समय में उठाते हैं। वे जनता के दिमाग में यह बात अच्छी तरह बिठा देना चाहते है कि वे ही उनकी माँगों को पूरा कर सकते हैं। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीला टाकभौर नागपुर के 'महल' क्षेत्र में महानगर पालिका के सफाई कर्मचारियों की संस्था के एक आयोजन में जाती है। इस आयोजन में समाज के अनेक राजनेता व कार्यकत्रा भी आते हैं। और भाषण देते हुए अपने विचार प्रस्तुत करतेहैं। सुशीला टाकभौरे को उन राजनेताओं के झूठे आश्वासन वाले भाषण सुनकर बहुत पीड़ा होती है। आज हम यह बात बड़ी आसानी से कह देते हैं कि जनता अपने मत का प्रयोग करना नही जानती। लेकिन जिसे दो वक्त की रोटी ही नसीब न हो तो वह भूखे पेट की चिंता करेगा या वोट की। गरीब जनता की इसी बात का फायदा ये राजनेता लोग उठाते हैं। जब से भारत स्वतन्त्र हुआ है प्रत्येक नेता बेरोजगार जनता को यही झूठा आश्वासन देता आया है कि उनकी सरकार आने पर उनकी बेरोजगारी दूर करके उनको रोजगार दिलवाया जाएगा। 'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भंडारी 'भारतीय युवा वर्ग की समस्याएँ' नामक विषय पर केन्द्रित एक सेमिनार में भाग लेने पटना गई थी। वहाँ पर निराश युवाओं ने मन्नू भंडारी को अपनी समस्याएँ बताई।

वर्तमान समय में राजनेता एवं राजनीति भ्रष्ट एवं स्वार्थी हो गई है। समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य के बावजूद

www.ignited.in

भारत के स्वतन्त्र होने पर जिन लोगों के हाथ में सत्ता आई। न तो उनकी समाजवाद में दृढ़ आस्था थी और न ही वे इस देश के जनसाधारण से जुडे। स्वतन्त्र भारत में राजनीति भारतीय नागरिक के जीवन के हर पक्ष पर छाती गई । तरह-तरह के कानून-नियम बनाकर उसने भारतीय नागरिक को पूरी तरह जकड़ कर उसकी स्वतन्त्रता का हनन कर दिया है। सत्ता पक्ष स्वाभाविक रूप से ही अराजकतावादी है। सत्ताधारी निजी स्वार्थ लिप्सा में डूबकर जन-साधारण का निरन्तर शोषण करता रहा है।

आज हमारे समाज में जो व्यक्ति जिस धर्म का होता है उसी धर्म से सम्बन्धित राजनीतिक पार्टी का समर्थन करता है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीला टाकभौरे अपने पति के साथ नागपुर विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. हरभजनसिंह हंसपाल के घर जाती है। वे दिन चुनाव प्रचार के थे। वहाँ पर राजनीतिक दलों की चर्चा चलती है। तभी हंसपाल बातों-बातों में कांग्रेस पार्टी का विरोध करते हुए भारतीय जनता पार्टी का खुलकर समर्थन करत हैं। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान पुलिस और नक्सलियों की मुठभेड़ में बड़ी मुश्किल से जान बचाकर अपने घर पहुँचती है। कलकत्ता में नक्सलियों ने खून खराबा करना शुरू कर दिया था। नक्सली चारों तरफ बमों से धमाके कर रहे थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति नक्सलवाद से घिरकर अपनी अस्मिता के लिए चिन्तित है। अनगिनत बेकसुर लोग नक्सलवाद का शिकार हो रहे हैं। दिन दहाड़े लोगों पर बम एवं गोलियाँ चलाई जा रही हैं। आदमी की नीयत इतनी निम्न स्तर की हो गई है कि वह अपने स्वार्थ के लिए आदमी पर ही अत्याचार कर रहा है। हर समय जन समुदाय मौत के कहर से जकड़ा हुआ है। कब उसका जीवन मौत के साये में बंधकर चूर-चूर हो जाए, उसे नही पता। नक्सलवाद का यह रूप कितना विभत्स एवं डरावना है। हिन्दी आत्मकथाओं में भी नक्सलवाद की पीड़ा का यथार्थ वर्णन मिलता है।

अतः कहा जा सकता है कि राजनीति जिसे राज करने की नीति कहतेहैं। इक्कीसवी सदी में राजनेताओं की नीति बन गई है। शासन व प्रशासन सब शासकों की इच्छानुसार चल रहे हैं। राष्ट्रहित को गौण रूप में रखा हुआ है। स्वहित प्रमुख बन गया है। विभिन्न राजनीतिक दल अपने-अपने दल या विचारधारा को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने में व्यस्त जनता को भ्रमित कर रहे हैं। कुर्सी हथियाने के लिए कुछ भी किया जा सकता है। चुनाव पर संकुचित राष्ट्रीयता एवं साम्प्रदायिकता के लिए अवसर लिए जाते हैं। आज आधुनिक युग में भ्रष्टाचार, अन्याय, धोखाधड़ी, मारकाट, चापलूसी, व्यक्ति का नैतिक एवं चारित्रिक पतन आधुनिक राजनीति के पर्याय बन चुक हैं। आज राजनेताओं के लिए राजनीति एक व्यवसाय बनकर रह गई है।

निष्कर्ष

धर्म और राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। राजनीति को मर्यादा में रखने वाला कोई और नही, धर्म ही रहा है, लेकिन कुछ दशकों में धर्म और राजनीति को लेकर एक द्वन्द्वात्मक बहस छिड़ी हुई है। धर्म की ओट में राजनीति करने की प्रवृत्ति ने धर्म के व्यापक अर्थ पर सवालिया निशान लगा दिया है। राजनीति के खिलाड़ी अपने-अपने ढंग से धर्म को राजनीति का साधन बनाने का प्रयास करते दिखाई पड़ रहे हैं। आज राजनीति में धर्म का अर्थ ही बदल गया है। सत्ता लोलुपता और स्वार्थ की भूख ने धर्म को संकीर्णता के चैराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्खए ईसाई सबको राजनीति में समेटने की कोशिश की जा रही है। समाज और देश को धर्म के नाम पर कमजोर करने की राजनीति हावी होती नजर आ रही है। आज का राजनेता एक भ्रष्ट व्यक्ति बन गया है। प्रत्येक छोटे-मोटे कार्य के लिए रिश्वत एवं सिफारिश का प्रचलन शुरू हो गया है। योग्यता एवं कार्यकुशलता को पीछे धकेल दिया गया है। प्रस्तुत अध्याय में चुनावी हथकण्डे, नोट के बदले वोट, झूठा आश्वासन, सत्ता का दुरुपयोग, धर्म और राजनीति, भ्रष्टाचार, निरंकुश पुलिस तन्त्र, नक्सलवाद आदि का वर्णन किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओमप्रकाश वाल्मीकिः जूठन (दूसरे खंड), राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण- 2015

2. राजेन्द्र प्रसाद जैन: मेरा जीवन-मेरा युग, साहित्य कला संगम, हिसार, संस्करण-2013

3. राधाचरण गोस्वामी: मेरा संक्षिप्त जीवन चरित्र, मथूरा प्रैस, दिल्ली, संस्करण-1895

4. मुंशीलुत्फुल्ला: एक आत्मकथा, इण्डियन प्रैस, इलाहाबाद, संस्करण-1939

5. शान्तिखन्ना: आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य, सन्मार्ग प्रकाशन, ब®गलो रोड, दिल्ली, संस्करण

6. सरिता वाशिष्ठ: युगबोध और हिन्दी नाटक, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण

7. सुभाष चन्द्र: दलित आत्मकथाएं अनुभव से चिंतन, इतिहासबोध प्रकाशन, बी-239, चंद्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद - 211004, प्रथम संस्करण-2006

8. श्रद्धानंद संन्यासी: कल्याण मार्ग का पथिक, ज्ञान मण्डल कार्यालय, काशी, संस्करण

9. हरिवंशराय बच्चन: बसेरे से दूर, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण

10. सं. उदयचन्द जैन: प्राकृत हिन्दी शब्दकोश, प्रकाशक: न्यू भारतीय बुक कोर्पोरेशन 5824, जवाहर नगर, (शिव मन्दिर के पास) न्यू चन्द्रावल, दिल्ली - 110007, प्रथम संस्करण-2005

Corresponding Author

Dr. Premchand Tiwari*

Principal, Gyanoday High School and Junior College, District-Thane, Maharashtra